आक्रामक अहमन्य अभिव्यक्ति क्यों

राहत इंदौरी का एक शेर है- 'एक अखबार हूं मैं, क्या औकात मेरी पर। तेरे शहर की नींद उड़ाने के लिए काफी हूं'। मुझे भी लगता है, राहत ने मीडिया की वह अहमन्य विनम्रता पहचानी है जो कभी-कभी अहमन्य धनवान अपनी विशाल कोठी को, राजा अपने राजमहल को झोपड़ी या राजनेता तथा प्रशासक अपने को जनसेवक-लोकसेवक कहते हुए व्यक्त करते हैं। इन दिनों यह बात बहुत लोगों को टीवी पर बहस के दौरान पत्रकारों, विशेषकर बहस के सूत्रधार पत्रकारों की भूमिका को देखते हुए याद आती है। यह जानकारी-ज्ञान मिश्रित अहमन्यता के लिए अकेले अर्णव गोस्वामी ही नहीं जाने जाते वरन एक तरह से नायकत्व की आकांक्षा भरी प्रतिस्पर्धा में बहुत से पत्रकारों ने इसे अपना लिया है। यह फेनोमेना टीवी का ही नहीं है। अखबारों में संवाददाताओं के साथ ही, काफी सम्पादक तथा अन्य पत्रकार भी इसे अपनाते रहे हैं। उन पर उस आसानी से आम लोगों की नजर नहीं पड़ी है, जैसी टीवी एंकरों, समन्वयकों या सूत्रधारों पर अब लोगों की है। ऐसी अहमन्य विनम्रता प्रशासक, पुलिस अधिकारी, राजनेता और धनवानों की भी है और इसे वे भी अपना अवगुण नहीं मानते हैं। यह उनसे पहाड़ों पर पाये जाने वाले प्रकृत निर्झरों की तरह स्वत: निकलकर बहती है। अब यदि इस तरह की विनम्र अहमन्यता सभी समर्थों में है तो पत्रकारों को ही चिन्हित करने का कोई विशेष आशय है क्या? हां, आशय है और मंशा यह भी है कि इस आक्रामक विनम्र अहमन्यता से उनकी मान्यता, विश्वसनीयता और सम्मान का क्षरण हो रहा है। उन्हें उसके मूल्यगत प्रभाव को समझते हुए इस क्षरण को रोकना चाहिये।

नि: संदेह पत्रकारिता का यह दौर सूचना के प्रभाव, व्यवसाय की सफलता और प्रतिस्पर्धा का है। पिछले दो-तीन विधानसभा और लोकसभा के चुनावों में लोकनिंदा और मूल्यहीनता की परवाह न करते हुए भी जनप्रतिनिधि तथा उनके दलों ने अपने प्रचार के लिए जो धन मीडिया को दिया वह सूचना के प्रभाव की वजह था। बहुत से व्यवसायी मीडिया पर नियंत्रण, राजनीति या प्रशासन के लिए नहीं चाहते हैं वरन वे इसके व्यावसायिक लाभ को जान गये हैं। वे दोहरे-तिहरे लाभों के लिए मीडिया का व्यवसाय कर रहे हैं। स्वयं मीडिया के बीच प्रतिस्पर्धा लोगों को जागरूक करने या बेहतर समाज बनाने के बजाय अपना मुनाफा बनाये रखने या बढ़ाने के लिए ही तो है। इस सबके बीच मीडिया के अपने मूल्य और उसके होने का आशय कहीं खो गया सा लगता है। मूल्य और आशय के साथ ही उसका बलिदानी-सेवा भाव भी अब इतिहास की बात हो चला है।

यह याद तो रखना पड़ेगा कि कम से कम भारत में पत्रकारिता की परम्परा व्यक्ति और समाज के सकारात्मक विकास के आशय से प्रारंभ हुई है। महात्मा गांधी, बालगंगाधर तिलक, लाला

लाजपत राय आदि से पी. साईंनाथ, प्रभाष जोशी, राजेन्द्र माथुर या एन. के. सिंह आदि तक का एक शताब्दी से अधिक हो रहे इतिहास का मतलब तो यही रहा है। भारत की पत्रकारिता इसी तरह के लोगों के कारण जानी-पहचानी जाती है। पता करें कि 'आज' बाबूराव विष्णु पराडकर, अम्बिका प्रसाद बाजपेयी के कारण पहचाना जाता है या बाबू शिवप्रसाद गुप्ता उसकी पहचान हैं जो इसे प्रकाशित करते थे। ऐसे ही अनेक उदाहरण हैं। अकड़ या स्वाभिमान इन लोगों में भी था। गुप्त और पराडकर के टकराव की कहानियाँ आज भी बताई जाती हैं। माखन लाल चतुर्वेदी की गरमाहट और विनम्रता के भी बहुतेरे किस्से हैं। स्वाभिमान और वैचारिक भिन्नता के लिए अपनी दृढ़ता की यह बातें आज भी एन. के. सिंह आदि तक में दिखाई देती हैं। पर असहमतियों के इस तरह के टकराव से उनका सम्मान बढ़ा ही था, लोगों ने न तो उन्हें अस्वीकार किया और न ही उनकी विश्वसनीयता में कमी आई। तब अब यह अहमन्य स्वाभिमान या आक्रामक तेवर आलोचना का विषय क्यों बन रहा है, यह विचार करने जैसा है।

पत्रकारिता विचार नहीं है। वह जानकारियों तथा विचारों की प्रस्तुति का ढंग या तरीका या माध्यम है। पत्रकार इस प्रस्तुति को तथ्य, समय, सरोकार आदि मूल्यों के आधार पर विवेचित करता हुआ प्रस्तुत करता है। वह न तो अपने विचारों को लादता है, न दूसरों के विचारों को रोकता, तोड़ता-मरोड़ता है। वह न तो इकाई को समग्र बनाता है और न ही किसी एक स्थान या व्यक्ति के साथ हुई घटना को सम्पूर्ण समाज, वर्ग में व्याप्त रूप में व्यक्त करता है। तथ्य और विवेचन-विश्लेषण, समय, प्रभाव आदि उसके आधार ही इसलिए हैं जिससे वह लोगों और समाज को बेहतर दृष्टि, विचार तथा दिशा देते हुए उन्हें अपनी चाहत का बेहतर समाज बनाने के लिए प्रेरित करे। पर अब ऐसा नहीं हो रहा है। वह व्यक्ति को ही समाज या सम्पूर्ण वर्ग बना देता है, एक को समग्र में बदलता है और लोगों को अपना मत व्यक्त करने के पूर्व ही उनपर अपना निष्कर्ष अथवा मत लादकर, लांछित करने का प्रयत्न करता है। इसे वह न केवल आक्रामक लहजे में प्रस्तुत करता है वरन कई बार तो अपनी व्यंग्यात्मक व्यंजनाओं से व्यक्ति की अवमानना करते हुए, अपने को गौरवान्वित अनुभव करता है। इसे क्या हम पत्रकारिता की विरासत के साथ जोड़ सकते हैं और क्या यह कह सकते हैं कि यही वह आदर्श भूमिका है? एक अर्थ में वह स्वयं विचार और तथ्य बनता जा रहा है। उसकी दृष्टि और अभिव्यक्ति अनंतिम न होकर अंतिम हो जाती है। यह न तो श्रेयस्कर है और न ही मूल्यधारित। इसे सोचें और वे लोग विचार करें जो पत्रकारिता को अपनी ऐतिहासिक विरासत और गौरव के साथ देखने समझने को उचित मानते हैं।

- कमल दीक्षित

****